वेदान्त आश्रम एवं मिशन की मासिक ई - पत्रिका

वेदान्त पीयूष

वर्ष २४ मार्च - २०२४ प्रकाशन - 03

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

मार्च २०२४

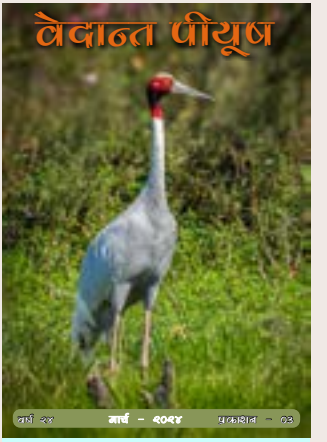

प्रकाशक

वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि

1,	श्लोक	05
2.	पू. गुरुजी का संदेश	06
3.	वाक्यवृत्ति	10
4.	गीता और मानवजीवन	15
5.	जीवन्मुक्त	20
6.	श्री जनक चरित्र	24
7.	कथा	28
8.	मिशन-आश्रम समाचार	32
9.	आगामी कार्यक्रम	46
10.	इण्टरनेट समाचार	47
11	लिन्क	48

मार्च 2024

देहान्यत्वान्न मे जन्म जराकार्श्यलयादयः।
शब्दादिविषयैः संगो निरीन्द्रयतया न च॥

(श्लोक - ३२)

मैं शरीर से विलक्षण हूं, अतएव जन्म, जरा, क्षय, मृत्यु आदि षड्विकार मुझमें नहीं है। मैं इन्द्रियों से रहित हूं, अतः शब्दादि विषयों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।

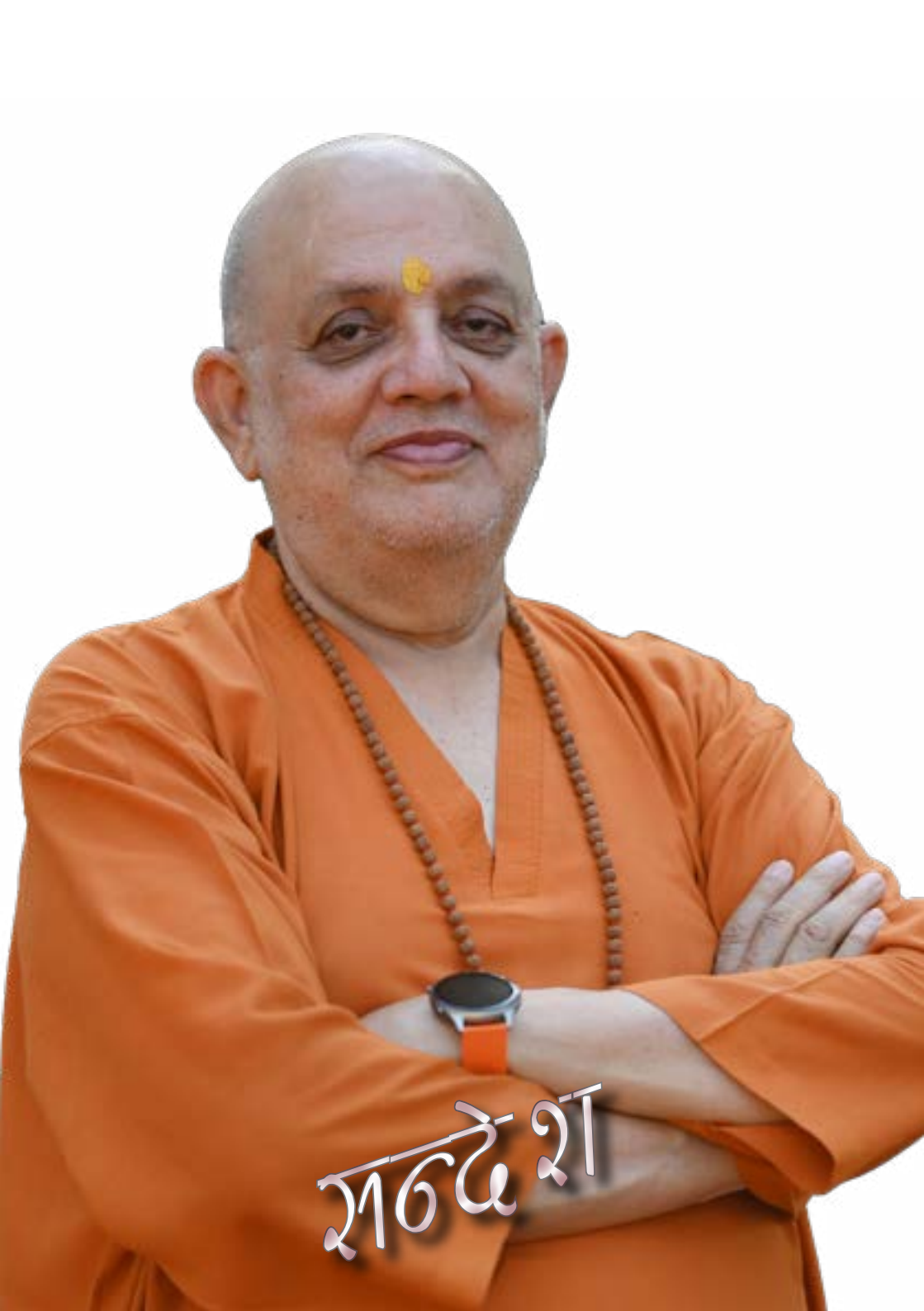
सन्देश

स्थितप्रज्ञ

स्थितप्रज्ञ के लक्षण में भगवान बताते हैं कि विषयों का सतत ध्यान करने पर पतन होना निश्चत ही है। इससे बचने का उपाय भी स्थितप्रज्ञ के लक्षण की तरह बताते हैं। 'जो राग-द्वेष से मुक्त इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण करता है, वह आत्मवशी प्रसन्नता रूपी प्रसाद को प्राप्त होता है।

यद्यपि इन्द्रियों की अपने अपने विषयों के प्रति पसंद-नापसंद स्वाभाविक ही होते है। किन्तु जब तक जीवन है, तब तक इन्हीं विषयों के मध्य में रहना है। हम अपनी इन्द्रियों को मुंद तो नहीं सकते है। अतः हमें यह कला सीखनी होगी कि कैसे हम विषयों के मध्य में रहते हुए भी उसके दोषों से मुक्त रह पाएं। इन्द्रियों में विषयों के प्रति प्रवणता व आकर्षण का कारण उसके पीछे विद्यमान मन में होता है। इस मन में ही विषयों के प्रति पसंद-नापसंद अर्थात् राग-द्वेष होते है। राग-द्वेष से प्रेरित इन्द्रियों में अब एक संवेग मिल गया है। अतः भगवान् ने कहा

कि, 'तस्मात्त्वम् इन्द्रियाणि आदौ संयम्य' अर्थात् सर्वप्रथम तो तुम अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित करो, उसके उपरान्त मत्परायण अर्थात् हम में राग जगाओं।

लक्ष्य के प्रति प्रेम जगाना इतना आसान नहीं होता है। उसके लिए हमारी समस्त फेकल्टिस को समर्पित होना पड़ता है। मन में प्रेम तब ही जग पाएगा कि जब बुद्धि में राग-द्वेष के वशीभूत होकर बहने का दोष ज्ञात होगा साथ ही लक्ष्य की महिमा का ज्ञान होगा। मन में भावना जगे तथा बुद्धि में निश्चय होने लगे, तब मन रागादि से मुक्त हो पाता है और आत्मवशी अर्थात् अपने नियंत्रण में होने लगता है।

राग-द्वेष के वशीभूत होकर बहने से पूर्व श्लोक में दर्शाई मनोस्थिति होने लगती है। ऐसा अशान्त मन सदैव खिन्न, अधूरेपन की पीडाओं से युक्त रहता है। किन्तु जब विवेक का आश्रय लेकर मन रागादि से मुक्त होता है, तो विषय के मध्य में रहते हुए भी वह शान्त रह पाता है। उसमें काम-वासना तथा उसके दुष्प्रभाव के कंकण तरंगित नहीं कर पाते है। ऐसा मन प्रसन्नता रूपी प्रसाद को प्राप्त करता है। प्रसन्न मन ही कामादि से मुक्त होकर अन्तर्मुख होता है और श्रवणादि के द्वारा ज्ञान का प्रसाद पाकर अपने स्वस्वरूप में स्थित हो पाता है।

परमात्मा के प्रति

भक्ति ही ज्ञान

के द्वार

खोल देती है।

आदि शंकराचार्य

द्वारा

विरचित

वाक्यवृत्ति

स्वामिनी अमितानन्द

यस्य प्रसादादहमेव विष्णुः मयि-एव सर्वं परिकल्पितं च।
इत्थं विजानामि सदात्मरूपं तस्यान्घ्रि पद्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम्।।

श्लोक – ०८

अत्र ब्रूमः समाधानं
कोऽन्यो जीवस्त्वमेव हि।
यस्त्वं पृच्छसि मां कोऽहं
ब्रह्मैवासि न संशयः॥

आचार्य शिष्य को प्रश्न का उत्तर देते हैं कि, कौन जीव, कौन परमात्मा है, तो उसका समाधान यह है कि जो तुम पूछ रहे हो, वह तुम ही जीव हो, कोई अन्य नहीं। और तुम ही ब्रह्म हो उसमें कोई संशय नहीं है।

वाक्यवृत्ति

पूर्व श्लोक में शिष्य ने आचार्य से प्रतिप्रश्न किया कि जीव कौन है? परमात्मा कौन है यह तो हम जानते ही नहीं है, तो फिर दोनों का ऐक्य हम कैसे जान सकते हैं?

अज्ञान में रहते हुए हर व्यक्ति स्वयं को देश, कालादि से परिच्छिन्न व्यक्ति मात्र समझता है। हम एक संकुचित व्यक्ति है, हमारा जन्म हुआ है और हम देहादि के विकारों से ग्रस्त एक दिन मृत्यु को प्राप्त होंगे। स्वयं को संकुचित मानकर जीनेवाला व्यक्ति कैसे अपने आपको पूर्ण स्वरूप परमात्मा जान सकता है? पहले तो यह मानने में ही नहीं आता है कि हम पूर्णस्वरूप है। अतः शिष्य का यह प्रश्न स्वाभाविक ही बनता है कि जीव कौन है? यदि हम ही जीव है तो हमारा और परमात्मा का ऐक्य सम्भव कैसे है? इस प्रश्न के माध्यम से शिष्य की श्रद्धा द्योतित होती है कि वह अन्धविश्वास से बात को मान नहीं रहा है, किन्तु इस ज्ञान को अपना बनाना चाहता है। उसके लिए गुरु के वचनों के

प्रति सत्यता की बुद्धि तो हो, किन्तु साथ ही तब तक विचार किया जाना है, जब तक यह तथ्य स्वयं हमारी दृष्टि न हो जाए। यही वेदान्त के साधक की पात्रता को दर्शाता है।

आचार्य बताते हैं कि आज तुम स्वयं को जो मान रहे हो, वह संकुचित जीव है। यह जीव शब्द का वाच्यार्थ है। एक होता है, वाच्यार्थ। जो कि आज की हमारी प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय है। वाच्यार्थ की दृष्टि से देखें तो आज अपनी अनुभूति से पूर्णतः विपरीत प्रतीत होता है। किन्तु दूसरा होता है, लक्ष्यार्थ। उस दृष्टि से देखें तो वस्तुतः यह जीव ही परमात्मा है। अर्थात् वही अखण्ड चेतना इस जीव की तरह से अभिव्यक्त हुई है कि जिस प्रकार एक ही जल तत्त्व विशाल समुद्र और ही छोटी लहर की तरह अभिव्यक्त होता है।

वेदान्तज्ञान की प्रक्रिया आरम्भ होने के पूर्व ही आचार्य लक्ष्य का परिचय दे रहे हैं, उससे ही ज्ञान का स्वरूप ज्ञात होता है। जिस

ब्रह्मात्मैक्य रूप लक्ष्य की सिद्धि करनी है, उसके बारे में सर्व प्रथम श्रद्धा होनी चाहिए कि यह हमसे पृथक् किसी और देश या काल में नहीं है, किन्तु हमारी आत्मा की तरह से ही है। अपने बारे में छोटेपन के निश्चय को शिथिल करने के लिए पूर्णता की श्रद्धा होना अनिवार्य है। 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः। इसीसे साधना का स्वरूप भी स्पष्ट होता है। जो हमसे पृथक् है, उसके लिए ही कर्मादि की आवश्यकता है। किन्तु जो हमें हमारी आत्मा की तरह पहले से ही प्राप्त है, उसे जानना मात्र है। प्राप्तस्य प्राप्ति ज्ञानेन। अतः मन भी शान्त, समाहित और कर्म से पूर्णतः संन्यस्त होकर अज्ञान की विनम्रता से युक्त ज्ञान में समर्पित हो पाता है।

अन्यथा यह ज्ञान परोक्ष, बौद्धिक मात्र रह जाता है और अपने से पृथक् परमात्मा की कल्पना करके उसकी अनुभूति की चेष्टा होती है। यह चेष्टा ही में कर्ता-भोक्ता, संकुचित जीव बनाए रखता है। जीव के रहते रहते पूर्णता में जाग्रति समीव नहीं है। अतः जीवत्व को शिथिल करने के लिए इस श्रद्धा से युक्त होना चाहिए।

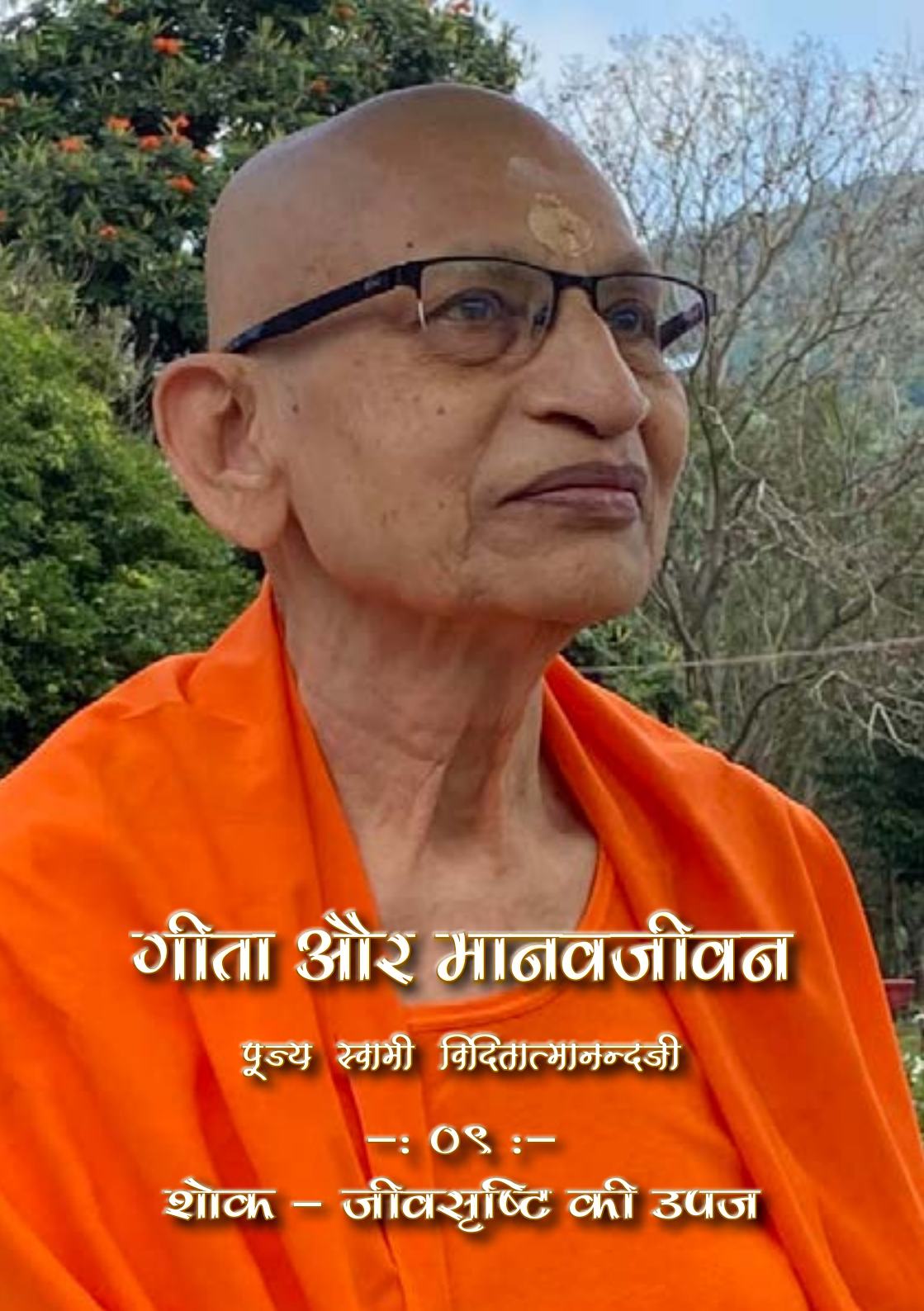

गीता और मानवजीवन

पूज्य स्वामी विदितात्मानन्दजी

–: ०९ :–

शोक – जीवसृष्टि की उपज

गीता और मानवजीवन

मनुष्यजीवन का मूलभूत प्रश्न है विषाद। ऐसा एक भी मनुष्य नहीं है, जिसे विषाद न हो। प्रत्येक मनुष्य जन्म लेता है, तब से ही विषाद में होता है। यह विषाद भिन्न-भिन्न रूप धारण करके आता है। कभी काम का, कभी लोभ का, कभी मत्सर का, तो कभी मद का।

सभी कहते हैं कि जीवन में प्रतिक्षण दुःख है। किन्तु हमने कभी सोचा है कि हमारे दुःख, शोक का कोई कारण है या नहीं? 'स्वामीजी, हमारे दुख के लिए अनेकों कारण है, मेरी सास कारण है, मेरा पति कारण है, मेरा बोस कारण है, मेरा बेटा कारण है।' इस प्रकार साधारणतः ऐसा मानते हैं कि हमारे विषाद का कारण अन्यत्र है। किसीसे पूछा कि तुम क्यों दुःखी हो? तो उत्तर मिला कि, 'स्वामीजी! तीन महिने से कोई समाचार नहीं आएं।' किसी अन्य से पूछा कि तुम क्यों दुःखी हो? तो कहता है, कि आज ही समाचार आएं।' तीसरे से पूछा कि क्यों दुःखी हो? तो बोलता है

गीता और मानवजीवन

कि मेरी शादी हो गई है। कोई सन्तान नहीं है और किसी को सन्तान है इसलिए दुःख है। इस प्रकार दुःख का कारण सतत बाहर ही देखते है। अतः जीवन में समस्त प्रयास बाह्य व्यवस्था को बदलने मात्र के लिए, दुःख के हेतु को दूर करने के लिए होता है। हम गलत धारणा युक्त यह ऐसा मानते हैं कि बाह्य परिस्थिति, वस्तु या व्यक्ति हमारे विषाद के लिए जिम्मेदार है।

कोई तो अपने दुःख के लिए खुद को ही दोषी समझता है कि, 'मैं ही ऐसा हूं। मेरा प्रारब्ध ही ऐसा है।' कोई ईश्वर को दोष देता है। यह सब गलत है। शोक के लिए कोई जिम्मेदार नहीं है, क्योंकि शोक नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। अर्जुन के विषाद को देखकर भगवान् अर्जुन से पूछते है कि तुममें यह शोक या उदासीनता कहां से आई? इसे तुम कहां से ले आएं? भगवान मानों कि यह बता रहे हैं कि हमने इस जगत की रचना की है, किन्तु शोक का तो सृजन नहीं किया है, तो तुम उसे कहां से लेकर आएं?

शोक जीवसृष्टि की, मनुष्य की अपनी उपज है; भगवान ने उसका सृजन किया ही नहीं है। जगत में

गीता और मानवजीवन

दो श्रेणी की वस्तु है; आत्मा और अनात्मा। उन दोनों में से तुम किसका शोक कर रहे है? आत्मा शोक के योग्य नहीं है क्योंकि उसका कदापि नाश नहीं होता है क्योंकि वह जन्मी ही नहीं है। जन्म उसीका होता है, जो वस्तुतः नहीं है और अस्तित्व में आता है। आत्मा तो नित्य है। इसलिए उसका जन्म नहीं है और जन्म नहीं होने से मृत्यु भी नही है।

तो फिर कौन जन्म लेता है और मरता कौन है? वैसे देखें तो जन्म और मृत्यु की प्रक्रिया चलती ही रहती है। बालक मिटकर युवा होता है, तब बालक की मृत्यु हुई और युवा का जन्म हुआ, युवा की मृत्यु होती है तब वृद्ध का जन्म होता है। किन्तु यह सब तो देह की अवस्थाएं है। देह में यह सब जन्म-मृत्यु की प्रक्रिया चलती रहती है किन्तु सबका साक्षी जो है, उन देही का जन्म भी नहीं है और मृत्यु भी नहीं है।

तो फिर शोक किसका? देह का, अनात्मा का? वह भी उचित नहीं है क्योंकि देह तो प्रकृति के नियमों के अधीन है। जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु निश्चित ही

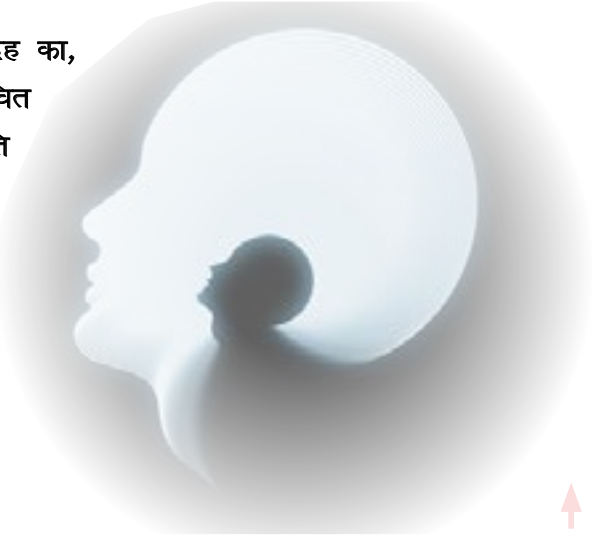

है। कितना भी प्रयत्न करने पर भी उसे रोक नहीं सकते है। देह अन्तवान है यह तथ्य को स्वीकार कर ले, जीवन के जो जो यथार्थ है, उसे स्वीकार कर लें तो शोक नहीं होगा। मृत्यु भी शोक करने योग्य नहीं है क्योकि अनिवार्य है। इस प्रकार आत्मा शोक के योग्य नहीं है और अनात्मा भी शोक के योग्य नहीं है। यह समझे तो ही शोक में से मुक्त हुआ जाता है।

किन्तु आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होगा तब तक शोक दूर नहीं होता है। यह ज्ञान होने के लिए समस्त तैयारी करनी पडती है। उसके लिए ही कर्मयोग है। उसके लिए ही जीवन के समस्त मूल्य है, और उसके लिए ही भगवद्-भजन है। कर्म तो इस समय जो भी करते है, वह होते रहे किन्तु उसके प्रति अपने अभिगम को बदलने की आवश्यकता है। इस समय हम अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए कर्म करते है जिससे अपने योग-क्षेम का वहन हो। भगवान् कहते हैं, 'योग और क्षेम का वहन तो मैं ही करता हूं। तुम यह सब चिन्ताएं हमें सोंप दो, और यज्ञ की भावना से कर्म करों।' अपने जीवन में यह भावना आनी चाहिए।

जीवनमुक्त

– ४३ –

गंगोत्री

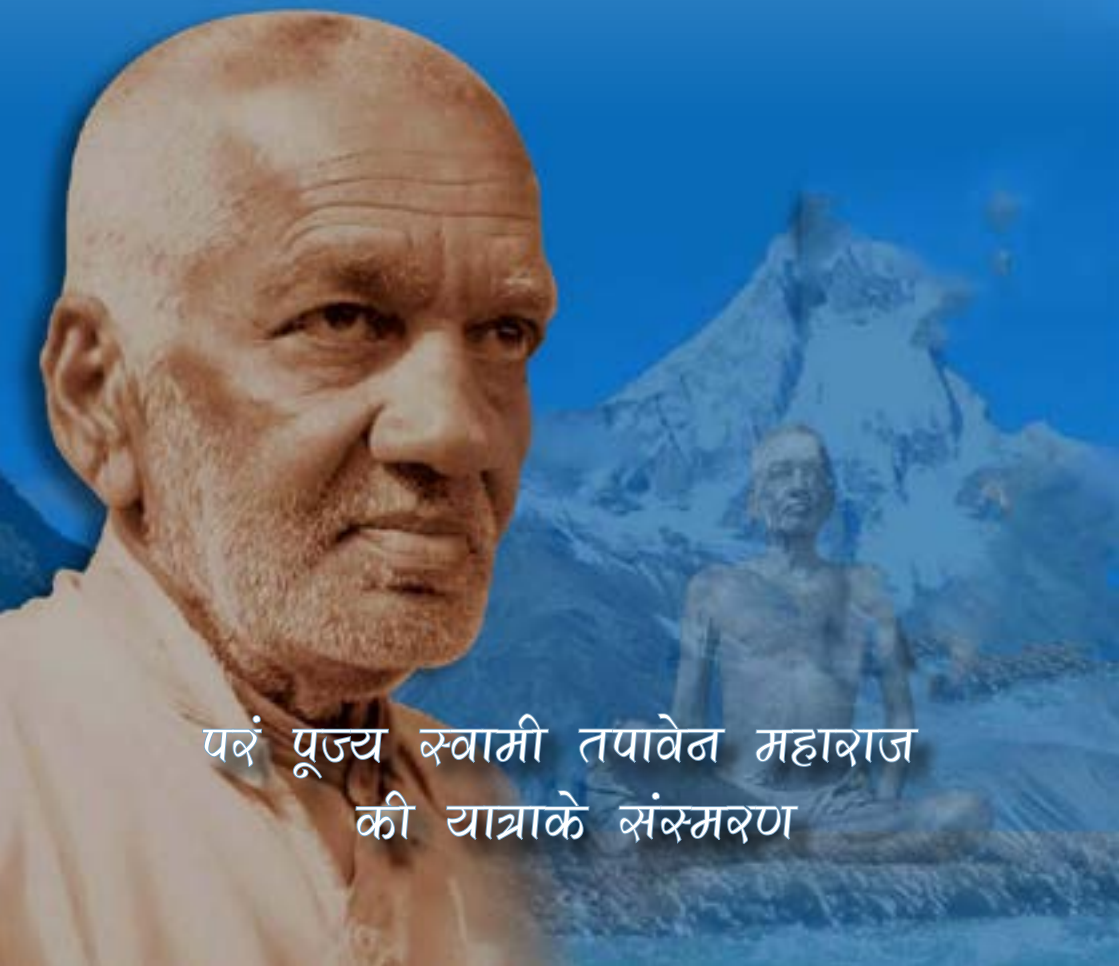

परं पूज्य स्वामी तपावेन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवनमुक्त

जब मैं गंगोत्री में जाकर रहा करता था, तब कभी कभी किसी मार्गहीन, शिलामय तथा अतिदुर्गम गंगा के किनारे से होकर गंगोत्रीधाम से उपर की और अकेले ही चलते जाना मेरे लिए अति आनंददायक था। चित्त को महान उन्मेष, शान्ति तथा उत्कृष्ट भावनाएं प्रदान करनेवाले उन विशिष्ट गंगातट विहारों को मैं अपने जीवन में कभी नही भूल सकता। मैंने एक बार अपने एक परिचित अति वृद्ध, विद्वान् महात्मा से प्रश्न किया था, जो कि गंगोत्री मन्दिर के उपर एक गुफा में रहते थे, 'इस बुढापे में यों एकाकी होकर इस गुफा में रहने की क्या जरुरत है? नीचे किसी सुविधाजनक स्थान पर जाकर क्यों नही रहते?' तो उन्होंने धीर और गम्भीर वाणी में जो उत्तर दिया था मैं कभी कभी उसका स्मरण करता हूं; 'पुराणों का कहना है कि

कई ब्रह्मर्षियों तथा राजर्षियों ने अपना अन्तिम जीवन गंगातट की गुफाओं में रहते हुए समाधिवृत्ति में बिताया था और यहीं शरीर छोड दिया था। यों, मैं भी अपने आखिरी दिनों में योगवृत्ति का अनुष्ठान करते हुए यहां रह रहा हूं। यहीं शरीर त्याग करने की मेरी इच्छा है। मेरे सामने कोई कल्पना नही है। सतत ध्यान निरत हो मैं दिन काट रहा हूँ। मुझे यहां किसी कष्ट या दुःख का अनुभव नहीं होता। 'आनंद आनंद' के सिवा यहां मेरे लिये कोई कष्ट होता ही नही।'' उनके इस कथन का मैं अनुमोदन किए बिना न रहा। गंगोत्री के निकट प्रदेशों में आज भी, इस कलिकाल में कई बडे महात्मा दिखायी देते है।

हे हिमालय! हे देवता-स्वरूपिन्! आपका तो भाग्य है ही अतुलनीय। आपके भाग्य की उपमा संसार में कही नही मिल सकती। अपने एक ही जलबिन्दु से हमारे शरीर को परिशुद्ध बनाने वाली यह पुण्यसलिला एवं जगदेकवन्दनीया भागीरथी आपकी पुत्री है। यह आप ही का परम सौभाग्य है कि आप इस लावण्यमयी मनोहारिणी पुत्री का अपनी गोद में पालन-पोषण कर आनन्दानुभूति प्राप्त कर रहे है। आपके इस अनुपम सौभाग्य पर किस पर्वतराज को ईर्ष्या नही होगी? आपकी शिरोमणि बनकर, आपको अत्यधिक सुशोभित

करनेवाली, इस गंगोत्री के समान लोकोत्तर महिमामय पुण्यधाम भला और किस शैल शिखर पर दिखायी देगा! दूसरे पर्वतों पर ऐसी गुफाएं उनके निवास के कारण कितनी शुद्ध पवित्र, शान्त और सुप्रकाशित है?

अहो आदि राज! आपके महाभाग्य तथा महिमातिशय का वर्णन कहां तक करें? हे मातृभूमि! आपकी महिमा निरुपम है! इतना विशिष्ट हिमशैल आपका उत्तमांग होकर विराजमान है तो आपके भाग्य की गणना कैसे की जा सकती है? अहो स्वात्मन्! इतनी सौभाग्यवती और इतनी विशिष्ट भारतभूमि ही आपकी प्रिया माता है तो आपके इस महान भाग्योदय के लिए मैं आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूं।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री जनक चरित्र

– ०१ –

प्रनवउं परिजन सहित विदेहू।
जाहि राम पद गूढ सनेहू।

श्री जनक चरित्र

विश्व के इतिहास में अगणित राजकुलों का वर्णन किया गया है, परन्तु मिथिला का राजकुल इसमें सर्वथा अप्रतिम था। इस परिवार की सर्वाधिक विलक्षणता थी, सारी वंश परम्परा का एक ही नामकरण। मिथिला का प्रत्येक राजा 'जनक' या विदेह था। दूसरी विशेषता जिसने इस कुल को अन्य राजकुलों से सर्वथा भिन्न रूप दे दिया वह थी, शौर्य या वीरता के स्थान पर ज्ञान की प्रधानता। ज्ञान की गरिमा से मण्डित यह राजकुल त्यागियों और तपस्वियों के लिए भी श्लाघा का विषय था। इनकी ख्याति का आधार था 'ज्ञान-योग'। अनेक मुनि ज्ञान और कर्मयोग का रहस्य हृदयंगम करने के लिए विदेहों के पास आया करते थे। पौराणिक गाथाओं में इस तरह के अनेक उपाख्यान उपलब्ध हैं। वस्तुतः भारतीय परम्परा में निवृत्ति और प्रवृत्तिपरक जीवन-दर्शन के दो रूप दृष्टिगोचर होते हैं। ब्राह्मण मुनियों के द्वारा प्रवर्तित जीवन-दर्शन मुख्यतः त्याग प्रधान है, तपस्या, तितिक्षा को उसमें सर्वाधिक महत्व दिया गया था। भौतिक भोगों से उठकर शाश्वत

श्री जनक चरित्र

सत्य और आनन्द की खोज उसका मुख्य लक्ष्य था। किन्तु इस दर्शन का एक परिणाम वर्तमान जीवन की उपेक्षा के रूप में भी सामने आता है, निष्काम कर्मयोग के माध्यम से इसे सन्तुलित करने की एक नई दृष्टि प्राप्त हुई। इसके मुख्य प्रणेता क्षत्रिय जाति के महापुरुष थे। यह राजर्षियों की परम्परा थी।

समस्त कर्मों को करते हुए भी व्यक्ति कर्मफल से कैसे उपर उठ सकता है, इस तत्त्व या जीवनदर्शन की व्याख्या राजर्षियों के द्वारा हो, यह स्वाभाविक था। राजाओं पर ही सामाजिक सुरक्षा का भार था। कर्म से पलायन समाज को निष्क्रिय बनाकर तमसाच्छन्न न बना दे इसके लिए यह आवश्यक था कि कर्म के प्रति हीन भावना न हो। यदि कर्म करता हुआ व्यक्ति सर्वदा ग्लानि से भरा हुआ यही सोचता रहे कि वह कोई अपराध या हीन कार्य कर रहा है तो उसका जीवन ही दूभर हो जाएगा। यदि कर्म के पीछे केवल भोगासक्ति को प्रेरक रूप में स्वीकार किया जाय तो इस प्रकार की हीन भावना का उदय स्वभावतः ही होगा। कर्म के पीछे भी सुव्यवस्थित दर्शन हो सकता है। इसकी स्थापना राजर्षियों ने अपने चरित्र के माध्यम से की। इस परम्परा के पुरोधा 'जनक' हैं। जिन लोगों ने कर्म के माध्यम से सिद्धि प्राप्त की उनमें सर्वप्रथम

श्री जनक चरित्र

इसी नाम की गणना की जाती है। इस जनक परम्परा में मानस प्रतिपादित महाराज सब से आगे हैं। जनक जहां केवल ज्ञानयोग और कर्मयोग के आचार्य थे, वहां हमारे चरित्र नायक में भक्तियोग की समग्रता स्वर्ण और सुगन्ध के एकत्रीकरण की उक्ति को सार्थक सिद्ध करती है। श्रीराम के दर्शन के पहले उनकी ख्याति या तो एक महान् ज्ञानी के रूप में थी या वे बहिरंग दृष्टि से एक योग्य राजा थे, जिनके पास भोगों का बाहुल्य था। किन्तु उनमें योग एवं भोग के अन्तराल में भक्ति की रसवन्ती धारा प्रवाहित हो रही थी। इसका ज्ञान तो तभी हुआ जब उन्होंने प्रभु रामभद्र का साक्षात्कार किया।

कथा / प्रसंग

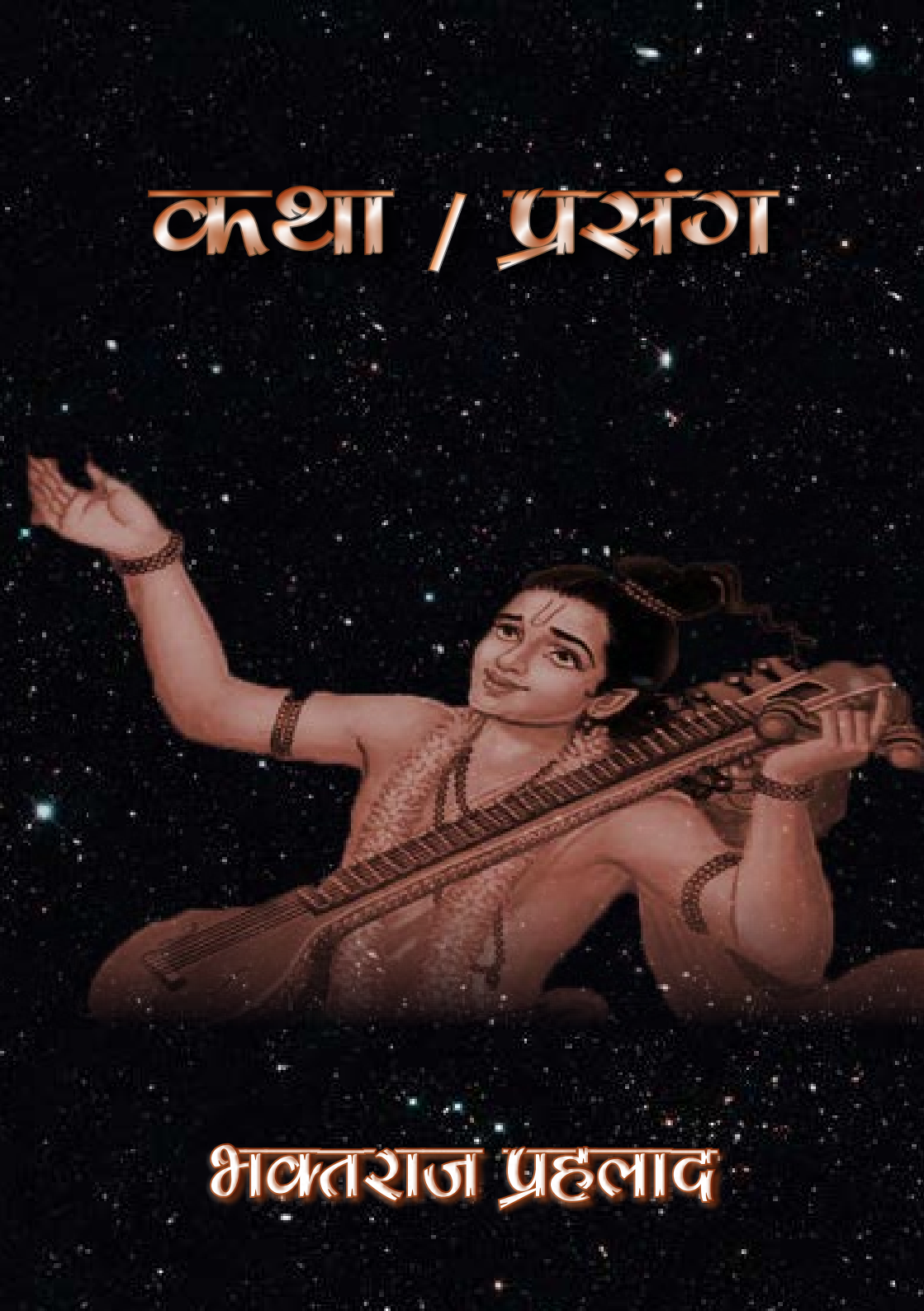

भक्तराज प्रह्लाद

भक्तराज प्रहलाद

भक्तराज प्रहलाद हिरण्यकश्यप नामक असुर का पुत्र था। बाल्यावस्था से ही प्रहलाद में विष्णुभक्ति जाग्रत थी। हिरण्यकश्यप नास्तिक व आसुरी प्रकृति से युक्त था। अतः वह चाहता था कि उनके राज्य में कोई भी किसी देवता आदि की पूजा-आराधना न करें किन्तु मात्र उसे ही भगवान की तरह पूजे। जब उन्हींका पुत्र परं विष्णुभक्त था, तो उसके लिए यह अत्यन्त अस्वीकार्य और असहनीय थी। अतः पहले तो उनकी भक्ति छूड़वाने के लिए अनेकों प्रकार की शिक्षा प्रदान करवाई। किन्तु उसका जब कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा तो उसकी हत्या करने का ही निश्चय कर लिया।

उसके लिए उसे कभी किसी उंचे पहाड़ से नीचे फेंका गया तो कभी पानी में डूबोया गया। कभी जहर दिया गया। इस प्रकार से अनेकों उपाय किएं किन्तु हर परिस्थिति में प्रभु ने उसकी रक्षा की। तब उसने अपनी ही बहन कि जिसे भगवान् की कृपा से एक ऐसा वस्त्र प्राप्त हुआ था कि जिसे धारण करने पर वह आग में

भी जल नहीं सकती है। अतः हिरण्यकश्यप ने अपनी बहन होलिका को यह आदेश दिया कि तुम यह वस्त्र धारण करके, प्रहलाद को अपनी गोद में लेकर अग्नि में प्रवेश करो जिससे कि वह जलकर भस्म हो जाएं। होलिका ने ऐसा ही किया। किन्तु भगवान् के सेवक वायुदेवता की कृपा से वह वस्त्र सरककर प्रहलाद के सिर पा आ गया, जिससे कि होलिका जल गई और प्रहलाद बच गया।

इस घटना से भी हिरण्यकश्यप की आंखें नहीं खुली और भगवद्-भक्ति की महिमा समझ में नहीं आई। तब उसने सोचा कि क्यों न लोहे के खम्भे को गरम करके उसके साथ उसे बांध दें, जिससे कि उसकी गर्मी से वह जुलस कर मर जाएगा। हिरण्यकश्यप ने कहा कि अब तुम अपने भगवान् को कर लो याद! इसमें अब तुम्हारे भगवान् कहां तुमको बचाने आएंगे। प्रहलाद उससे लेशमात्र भी विचलित नहीं हुआ व सतत प्रभु की आराधना करता रहा। तब उस खम्भे को फाड़कर उसमें से भगवान् विष्णु नरसिंह रूप में प्रकट हुएं।

हिरण्यकश्यप ने घोर तपस्या करके प्रभु से ऐसा वरदान प्राप्त किया था कि वह न अन्दर, न बाहर, न दिन को न रात्रि को, न किसी देवता या पशु से और न ही मनुष्य से मृत्यु को प्राप्त हो।

भक्तराज प्रहलाद

अतः भगवान् न नर के रूप में न पशु के रूप में किन्तु नरसिंह रूप में कि जिसका आधा शरीर नर का और आधा शरीर सिंह का था ऐसे रूप में प्रकट़ हुएं। वे हिंसक प्राणी की तरह दहाड़ते हुए हिरण्यकश्यप के पास पहुंचे। उसे अपनी सशक्त बाहुओं से घसीटते हुए प्रासाद की देहरी पर कि जो न अन्दर कहलाती है और न ही बाह्य – वहां ले गएं। बराबर संध्या के समय कि जो न दिन होता है और न रात्रि उसके संधिकाल में उसे अपनी गोद में लेकर अपने तीक्ष्ण नाखुनों के माध्यम से हिरण्यकश्यप के शरीर को चीर डाला और इस प्रकार भयानक शक्तिशाली असुर हिरण्यकश्यप का वध करके भक्त प्रहलाद की रक्षा की।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम / मिशन समाचार

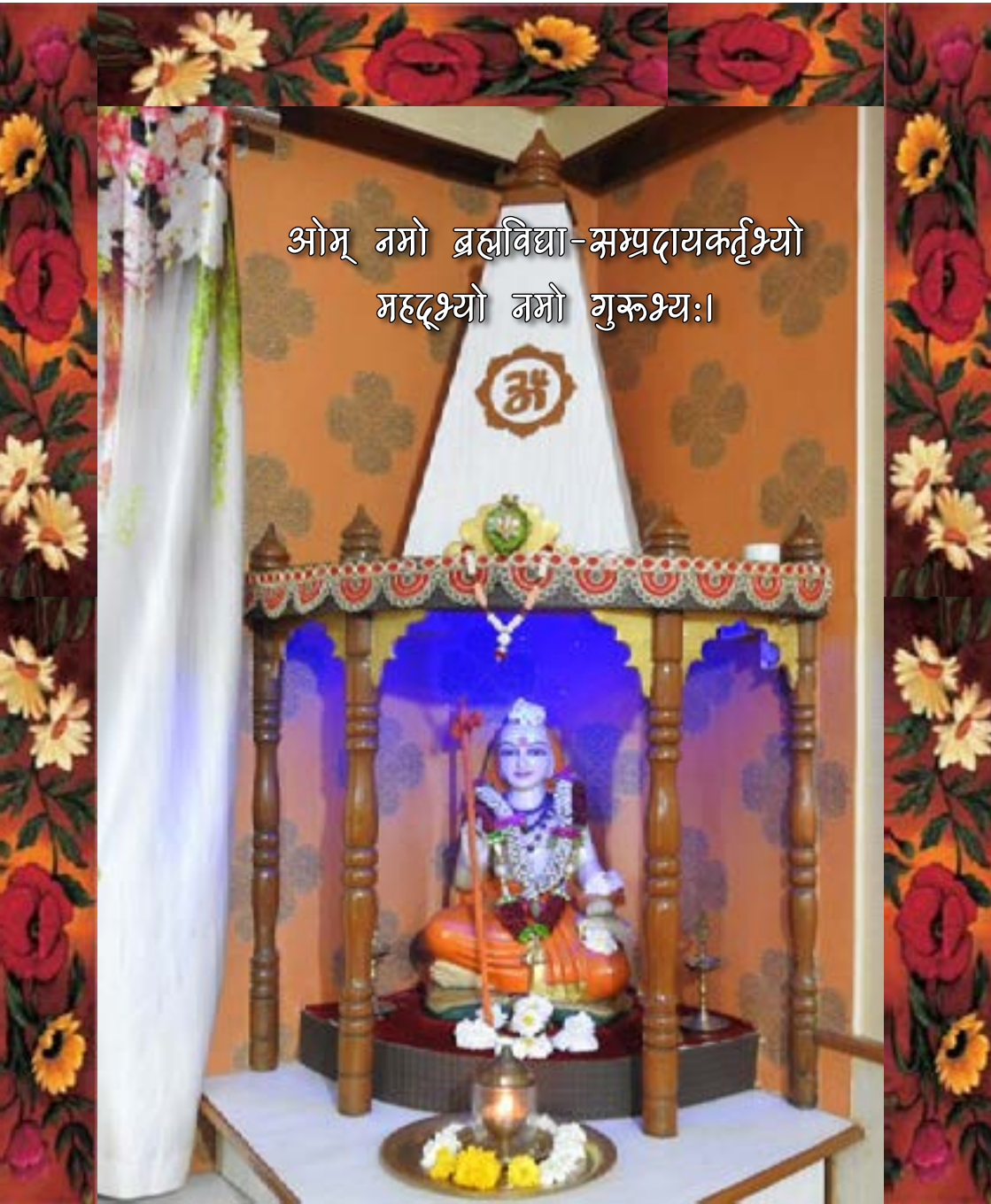

आश्रम / मिशन समाचार

गीता कक्षा - शांकर भाष्य समेत

आश्रम / मिशन समाचार

आश्रम / मिशन समाचार

शिव अभिषेक - पू. स्वामिनीजी का संन्यास दीक्षा दिन

आश्रम / मिशन समाचार

आश्रम / मिशन समाचार

स्वामिनी पूर्णानन्दजी का जन्मदिन

आश्रम / मिशन समाचार

श्री सुनिल एवं मजू गर्ग की शादी की सालगिरह पर पूज्य गुरुजी के आशीर्वाद

आश्रम / मिशन समाचार

श्री सुनिल एवं मजू गर्ग की
शादी की सालगिरह

आश्रम / मिशन समाचार

श्री विनोद एवं दुर्गा पुरी की शादी की सालगिरह पर पू. गुरुजी के आशीर्वाद

आश्रम / मिशन समाचार

श्री विनोद एवं दुर्गा पुरी की
शादी की सालगिरह

आश्रम / मिशन समाचार

आश्रम / मिशन समाचार

आश्रम / मिशन समाचार

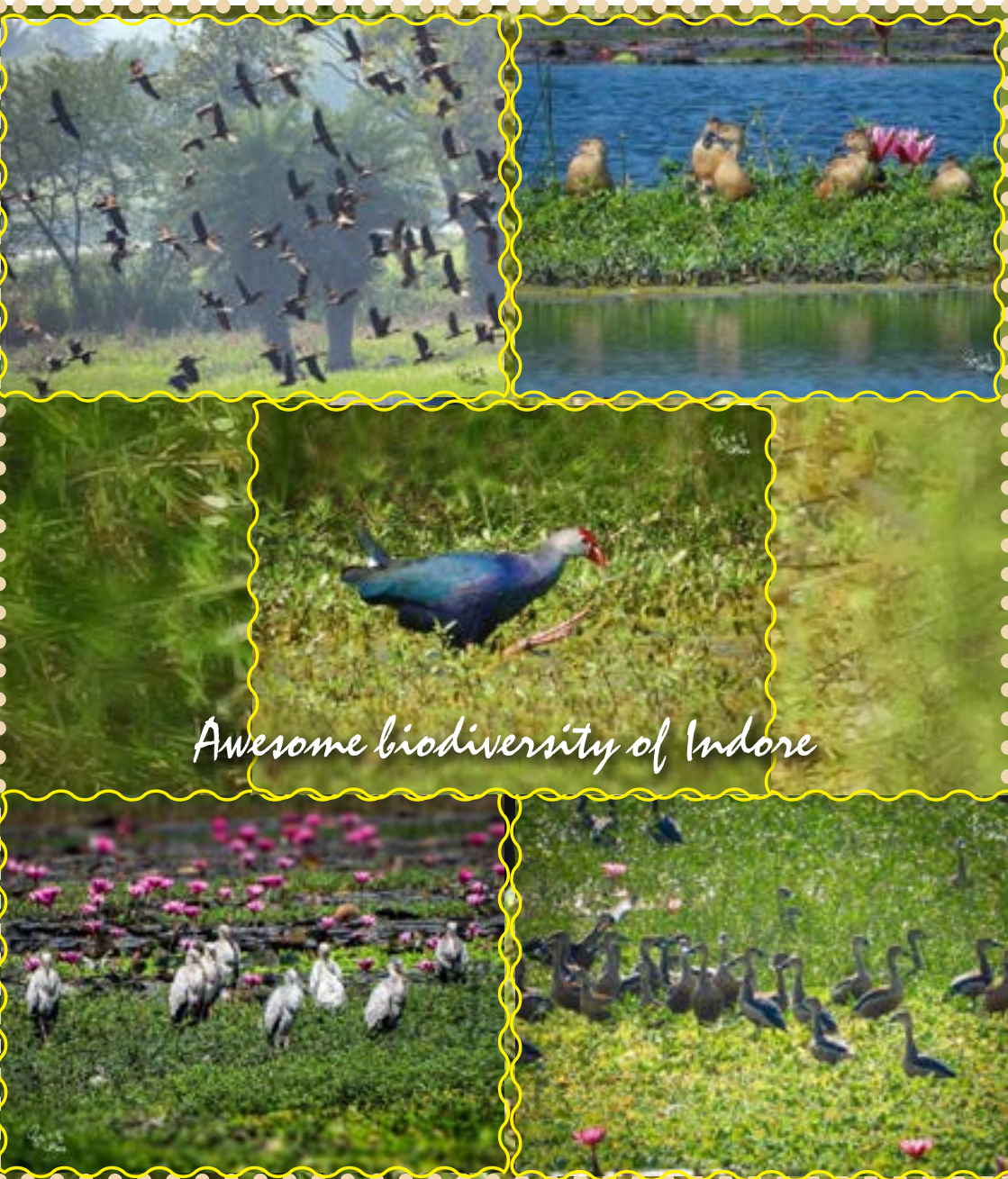

आश्रम / मिशन समाचार

श्रीमद् भगवद् गीता

(शांकर भाष्य समेत) नित्य कक्षाएं

प्रतिदिन प्रातः 7.30 बजे से (मंगल से शनिवार)

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

Internet News

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

(Click here)

Gita / Upanishad/ Prakaran Granthas

Sundarkand / Hanuman Chalisa

Shiv Mahimna Stotram / Chanting

Moral Stories etc

Audio Pravachans (Click here)

Gita / Upanishad/ Prakaran Granthas

Vedanta Ashram YouTube Channel

Vedanta & Dharma Shastra Group

Monthly eZines

Vedanta Sandesh - Mar '24

Vedanta Piyush - Feb '23

Visit us online :
Vedanta Mission

Check out earlier issues of :
Vedanta Piyush

Join us on Facebook :
Vedanta & Dharma Shastra Group

Subscribe to our WhatsApp Channel
Vedanta Ashram Channel

Published by:
Vedanta Ashram, Indore